



ISSN Print: 2394-7500
 ISSN Online: 2394-5869
 Impact Factor: 5.2
 IJAR 2015; 1(8): 521-523
 www.allresearchjournal.com
 Received: 23-05-2015
 Accepted: 25-06-2015

डॉ गीता यादव

ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
 डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय
 कोसली

पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं (रामचरितमानस में स्त्री विशेष के संदर्भ में)

डॉ गीता यादव

पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं, मनुष्य के सर्वोत्तम विचारों में एक है। जिसका अर्थ है कि पराधीन मनुष्य को सपने में भी सुख नहीं मिलता। सच ही है यदि ऐसा न होता तो स्वाधीनता की सारी थ्योरी ही खंडित हो जाती। विश्व के किसी भी कोने में लड़ी जाने वाली स्वाधीनता की लड़ाई के पीछे यही सोच रही है कि विदेशी शासन कितना भी अच्छा क्यों न हो, उससे कई गुणा अच्छा स्वाधीन होना है, भले ही उसमें कितनी भी कमियाँ क्यों न हों। पराधीनता में सुख नहीं है इसलिए स्वाधीनता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मनुष्य की सारी कोशिश इसे पाने में लगी रहती है। यह महान और उत्तम विचार तुलसीदास जी की रामचरितमानस से लिया गया है। परन्तु वहाँ इसका प्रसंग बिल्कुल अलग है। यह कथन पार्वती जी को स्त्री धर्म की शिक्षा देते हुए अत्यंत दुखी होकर उनकी माता मैना कहती हैं—

‘कत बिधि सृजिं नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुखु नाहीं।’¹

अर्थात् विधाता ने जगत में स्त्री को क्यों पैदा किया? पराधीन को सपनों में भी सुख नहीं मिलता। स्पष्ट है कि तुलसीदास जी यह तो मानते हैं कि स्त्री पराधीन है और पराधीन को सपने में भी सुख नहीं मिलता। परन्तु विशेष बात यह है कि अन्य बहुत से महापुरुषों की तरह तुलसीदास जी की दृष्टि में स्त्री का पराधीन होना कोई शाप नहीं है, अनुचित भी नहीं है, क्योंकि वह इसी लायक है। हालांकि तुलसीदास जी को उनकी स्त्री विरोधी मानसिकता के लिए कितना दोष दिया जाए, यह अलग प्रश्न है, क्योंकि स्त्री विरोधी मानसिकता उन्हें परम्परा से प्राप्त हुई और यह आज तक बनी हुई है। आज भी स्त्री के कर्म सौन्दर्य का नहीं अपितु रूप सौन्दर्य का ही वर्णन होता है। देश की संसद तक में काली चमड़ी और गोरी चमड़ी के आधार पर स्त्री संबंधी बहस यहीं दर्शाती है। अधिकांश चुटकले और हास्य टेलीसीरियल इसी स्त्री विरोधी सोच से भरे पड़े हैं। उन्हें देखकर और सुनकर ऐसा लगता है कि स्त्री या तो भोग का विषय है या मजाक का। ऐसा जानबूझ कर ही होता हो यह जरूरी नहीं। ऐसा संस्कारवश भी होता है क्योंकि स्त्री विरोधी सोच हमारे संस्कारों में है। यह सिर्फ पुरुष के ही नहीं स्त्री के संस्कारों में भी है। आमिर खान के शो ‘सत्यमेव जयते’ में एक बहस के दौरान यह बात उठी कि जब स्त्री स्वयं स्त्री-विरोधी कुछ सोच रही होती है जैसा कि कहा जाता है कि स्त्री ही स्त्री की दुश्मन होती है, तो ऐसा वह उस पुरुष प्रधान मानसिकता के कारण करती है, जिसके अनुसार समाज में उसका पालन पोषण हुआ। यह वह समाज है जहाँ स्त्री ‘second sex’ के रूप में देखी और मानी जाती है। जयशंकर प्रसाद के नाटक ‘ध्रुवस्वामिनी’ में ध्रुवस्वामिनी कहती है कि— ‘पराधीनता की एक परंपरा सी उनकी नस-नस में, उनकी चेतना में न जाने किस युग से घुस गई है। उन्हे समझकर भी भूल करनी पड़ती है।’² अब प्रश्न यह उठता है कि स्त्री पराधीन क्यों है? आचार्य चाणक्य व्यक्ति के कष्ट का बड़ा कारण मानते हैं — दूसरे के घर में निवास करना। वे लिखते हैं—

**‘कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम्।
 कष्टात्कष्टतरं चैव परगेहनिवासनम्।’³**

अर्थात् मूर्खता निश्चित ही कष्टकारक है, युवावस्था भी कष्टदायक होती है लेकिन उससे भी अधिक कष्टकारक दूसरे के घर में निवास करना होता है। हम देखते हैं कि चाहे यह सामाजिक आवश्यकता रही हो या पुरुष वर्चस्व, स्त्री ही विवाह के बाद पुरुष के घर में जाकर रहती है। इसलिए बचपन से ही उसका पालन पोषण पराया धन और पराया घर के संस्कारों के साथ होता है। परायेपन का यह भाव उसके साथ सदा ही लगा रहता है। घर या तो उसके पिता या भाई का होता है या उसके

Correspondence:

डॉ गीता यादव

ऐसिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
 डी.ए.वी. महिला महाविद्यालय
 कोसली

पति का। पिता के घर वह पराई संपत्ति और दूसरे की अमानत बन के रहती है। जब जन्म देने वाले पिता के घर ही वह पराई है तो ससुराल, जहाँ निश्चित ही उसका अपना कोई सगा नहीं है वहाँ वह पराधीन है ही। इसीलिए तो मैना पार्वती से कहती हैं—पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। पर्वतराज भी अपनी पुत्री पार्वती को विदा करते हुए शिवजी से कहते हैं —

**‘नाथ उमा मम प्रान सम गृहकिंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब होइ प्रसन्न बरु देहु।’⁴**

अर्थात् हे नाथ ! यह उमा मुझे अपने प्राणों के समान (प्यारी) है। आप इसे अपने घर की टहलनी बनाइयेगा और इसके सब अपराधों को क्षमा करते रहियेगा। आश्चर्य है कि अपने प्राणों के समान पुत्री को पिता किसी और की दासी बनने के लिए सहर्ष ही दान कर देता है, पर यही बात वह अपने पुत्र के लिए कभी नहीं कहेगा। इसी प्रकार राजा जनक सीता सहित अपनी अन्य पुत्रियों को विदा करते हुए राजा दशरथ से कहते हैं —

‘ए दारिका परिचारिका करि पालिबीं करुना नई।’⁵

अर्थात् इन लड़कियों को टहलनी मानकर, नयी-नयी दया करके पालन कीजियेगा। यह सब क्यों हो रहा है? इसके पीछे कारण क्या है? यह सब इसलिए हो रहा है कि स्त्री दूसरे के घर में जाकर रहने वाली है — निश्चित ही उसे दूसरों की इच्छाओं को मानकर और अपनी इच्छाओं को मारकर रहना होगा।

पराधीनता की अपनी कुछ शर्तें हैं— जिनमें एक है व्यक्ति की सोच को गुलाम बनाना। शरीर की गुलामी से व्यक्ति गुलाम नहीं होता, मन की हार और गुलामी से व्यक्ति पराधीन होता है। शरीर की बेड़ियाँ काटना कोई कठिन काम नहीं है और अगर बेड़ियाँ न भी कटे तो क्या ? मन को उड़ान भरने से किसने रोका है ? आजादी को लेकर विश्व की सर्वोत्तम कविताएँ जेल में लिखी गई हैं। स्त्री को किसने रोका है, पिता या पति का घर छोड़कर जाने से ? स्त्री को किसने रोका है, अपने भाई या पति पर हाथ उठाने से ? उसके मन ने, उसके संस्कारों ने। स्त्री सोचती है कि मैं कमजोर हूँ, अगर पुरुष मुझे त्याग देगा तो मैं कहाँ जाऊँगी ? बेड़ियाँ स्त्री के पैरों में भी हैं और उसके मन में भी। जब किसी का पालन-पोषण ही यह कह कर किया जाए कि तू मूर्ख व अज्ञानी है और यह तेरा सौभाग्य है कि पुरुष तुझे अपने चरणों में स्थान दे रहा है तो उस स्त्री को स्वप्न में भी भला सुख कैसे मिल सकता है ?

दासी, बाँदी, सेविका इस तरह के शब्द हैं जो हमारे शास्त्रों में और धर्मग्रंथों में स्त्री के लिए सामान्यतः प्रयुक्त होते हैं। स्त्री के इस दासत्व रूप से कोई भी स्त्री बची नहीं रही, चाहे वह जगत जननी पार्वती हो या सीता। यह तुलसीदास जी की नारी विषयक सोच ही है कि वहाँ पार्वती भी जड़ और अज्ञानी है। परन्तु यह उनकी चालाकी है कि अधिकांश स्थलों पर इन विशेषणों का प्रयोग पार्वती स्वयं अपने लिए करती हैं, शिव उनके लिए नहीं। पार्वती शिवजी से सुंदर रामकथा सुनने का आग्रह करती हुई कहती हैं कि—

‘जदपि जोषिता नहिं अधिकारी। दासी मम क्रम वचन तुम्हारी ।।’⁶

अर्थात् यद्यपि स्त्री होने के कारण मैं सुंदर रामकथा सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ पर मैं मन, क्रम और वचन से आपकी दासी हूँ। अतः मुझे रामकथा सुनाने की कृपा करें। देखने और सोचने की बात यह है कि जो पार्वती शिव को प्राप्त करने के लिए भक्ति और साधना के उस चरमोत्कर्ष पर पहुँच गई थी जहाँ पहुँच कर उन्होंने सूखे पत्ते भी खाना छोड़ दिया था और जिस कारण वे अपर्णा कहलाई, वहीं पार्वती कहती हैं कि मैं स्त्री होने के कारण

रामकथा सुनने की अधिकारिणी नहीं हूँ। ऐसा क्यों ? पराधीनता के नारियोजित संस्कार होने के सिवाय इसका क्या कारण हो सकता है।

इसी प्रसंग में आगे जब शिवजी पार्वती को श्रीराम के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान कराते हैं तो तुलसीदास जी लिखते हैं कि— ‘शिवजी के भ्रमनाशक वचनों को सुनकर पार्वती जी के सब कुतर्कों की रचना मिट गई।’ पार्वती शिवजी से कहती हैं कि आपकी कृपा से अब मेरा विषाद जाता रहा और आपके चरणों के अनुग्रह से मैं सुखी हो गई। पार्वती पुनः कहती हैं —

‘अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड़नारि अयानी।’⁷

अर्थात् आपने मुझे अपनी दासी जानकर मुझ पर अनुग्रह किया, यद्यपि मैं स्त्री होने के कारण स्वभाव से ही मूर्ख और ज्ञानहीन हूँ। जब जगत जननी पार्वती जी की यह दशा है तो सामान्य नारी तुलसीदास जी के स्त्री विषयक सांचे में कहाँ बैठती होगी, यह आसानी से समझा जा सकता है। नारी विरोधी इन कथनों में एक और विशेष बात है कि अपने आपको मूर्ख और अज्ञानी बताते हुए कहीं भी आत्म-धिवकार या ग्लानि का भाव नहीं है बल्कि यह सहज स्वीकार्य तथ्य के रूप में प्रकट होता है। जैसे जब पार्वती सती के रूप में शिवजी की पत्नी थी तो भी अपने लिए कहती हैं—

‘कीन्ह कपट मैं संभु सन नारि सहज जड़ अग्य।’⁸

सती अनसूया सीता को नारी धर्म का जो ज्ञान देती है, वह पूरी तरह से स्त्री विरोधी मानसिकता से भरा पड़ा है। अनसूया सीता से कहती हैं— ‘शरीर, वचन और मन से पति के चरणों की सेवा करना स्त्री के लिए, बस यह एक ही धर्म है, एक ही व्रत है और एक ही नियम है।’⁹ बहुत से लोगों को शायद इसमें नारी विरोधी कुछ ना दिखे पर जब अनसूया कहती हैं कि— ‘वृद्ध, रोगी, मूर्ख, निर्धन, अंधा, बहरा, क्रोधी और अत्यंत ही दीन — ऐसे भी पति का अपमान करने से स्त्री यमपुर में भौंति-भौंति के दुख पाती है।’¹⁰ तब यह कौन सा मानवतावादी दर्शन है। प्रश्न स्त्रीवादी सोच का नहीं, मानवीय दृष्टिकोण का है। स्त्री सहज जड़, अज्ञानी, इसलिए ताड़ने की अधिकारी ! पुरुष मूर्ख, क्रोधी, रोगी हो तो भी पूजनीय ! इसी सोच के कारण अनसूया कहती हैं —

‘सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।’¹¹

अर्थात् स्त्री जन्म से ही अपवित्र है, किंतु पति की सेवा करके वह अनायास ही शुभ गति को प्राप्त कर लेती है।

नारी जन्म से ही और अपने सहज स्वभाव से ही मूर्ख और अज्ञानी होती है, बात सिर्फ यहीं तक नहीं रुकती। यह नारी विरोधी स्वर तो दूर तक जाता है, जहाँ वह कपटी, कुचाली, अधर्मी और पापी—मतलब सभी अवगुणों की खान दिखायी देती है। राम को वन भेजने के प्रकरण में राजा दशरथ विलाप करते हुए कहते हैं कि—

**‘कवने अवसर का भयउ गयउँ नारि बिस्वास।
योग सिद्धि फल समय जिमिं जतिहि अबिद्या नास।’¹²**

अर्थात् स्त्री का विश्वास करके मैं वैसे ही मारा गया, जैसे योग की सिद्धि रुपी फल मिलने के समय योगी को अविद्या नष्ट कर देती है। जब भरत को पता चलता है कि राम को वन में भेजने के पीछे कैकई का हाथ है तो भरत अपनी माता के लिए जिस प्रकार के अपशब्दों का प्रयोग करते हैं, वह उस भारतीय परंपरा के बिल्कुल विरुद्ध है, जिसमें नारी का सबसे सम्मानीय रूप माता का है। अपने पति के साथ युद्ध क्षेत्र में जाकर लड़ने वाली और

उसके प्राणों की रक्षा करने वाली साहसी कैकई कैसे दशरथ और भरत की दृष्टि में कपट और अवगुणों की खान बन जाती है, यह देखने और सोचने की बात है। भरत कहते हैं – 'स्त्रियों के हृदय की गति (चाल) विधाता भी नहीं जान सके। वह संपूर्ण कपट, पाप और अवगुणों की खान है। फिर राजा तो सीधे, सुशील और धर्म परायण थे। वे भला, स्त्री स्वभाव को कैसे समझते?'¹³

चाहे तुलसीदास जी हो या कोई अन्य विद्वान स्त्री-विरोधी इस घोर मानसिकता का कारण क्या हो सकता है, समझ में नहीं आता। प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति की सोच उसके अपने अनुभवों से बनती है पर जहाँ तक तुलसीदास जी का प्रश्न है उनका तो व्यक्तिगत अनुभव भी स्त्री को मूर्ख, जड़, अज्ञानी नहीं बतायेगा। सब जानते हैं कि उनकी पत्नी रत्नावली एक विदुषी और संस्कारशील महिला थी। एक बार अपने मायके गई हुई रत्नावली के वियोग को न सह पाने की स्थिति में जब तुलसीदास जी उनके पीछे-पीछे वहाँ जा पहुँचे तो रत्नावली ने उन्हें बहुत धिक्कारते हुए कहा- 'मेरे इस हाड़-माँस के शरीर में जितनी तुम्हारी आसक्ति है, उससे आधी भी यदि भगवान में होती तो तुम्हारा बेड़ा पार हो जाता।' और माना जाता है कि तुलसीदास जी संसार से विरक्त होकर राम-भक्त हो गए। इस प्रकार उनका व्यक्तिगत अनुभव भी स्त्री को मूर्ख, जड़, अज्ञानी और विवेक-बुद्धि हीन नहीं कहेगा। फिर उनके मन में स्त्री को लेकर इतनी कटुता का कारण क्या रहा होगा? दरअसल यह सोच सिर्फ तुलसीदास जी की ही तो नहीं है। इस सोच के पीछे पुरुष के संस्कार और उसका सुपर-ईगो है जो स्त्री को ना कहने का अधिकार नहीं देता। पुरुष स्त्री को त्याग और ममता की देवी तो मान सकता है, पर बुद्धि और योग्यता में स्वयं से श्रेष्ठ नहीं। परिणामस्वरूप उसकी सारी चेतना और चेष्टा स्त्री को जड़, अज्ञानी मानकर पराधीन बनाए रखने में लगी रहती है।

दरअसल भारत में ही नहीं दुनिया की हर सभ्यता और संस्कृति में स्त्री 'second sex' के रूप में उपेक्षित बनकर रही है। पुरुष के जीवन में उसका स्थान है, पर जब प्रश्न भाई-बंधुओं का हो तो वह गौण हो जाती है। लक्ष्मण मूर्च्छा के प्रसंग में राम बहुत दुखी होते हैं, स्वाभाविक भी है। अनेकों प्रकार से विलाप करते हुए वे कहते हैं कि –

**'जैहँ अवध कवन मुहु लाई। नारि हेतु प्रिय भाइ गँवाई।।
बरु अपजस सहतेउजग माहीं। नारि हानि विशेष छति नाहीं।।'¹⁴**

अर्थात् स्त्री के लिए प्यारे भाई को खो कर, मैं कौन सा मुँह लेकर अवध जाऊँगा? मैं जगत में बदनामी भले ही सह लेता (कि राम में कुछ भी वीरता नहीं है जो स्त्री को खो बैठे)। स्त्री की हानि से (इस हानि को देखते हुए) कोई विशेष क्षति नहीं थी। भले ही आत्मधिक्कर और ग्लानिवश राम यह कह रहें हों और हम भारतीयों के संस्कार ऐसे हैं कि इस बात से हम सहमत भी हो सकते हैं पर स्त्री की दृष्टि से देखें तो एक ओर स्त्री है जो अपने पति के साथ वन में चली आई, उसके लिए पति ही सब कुछ है। राम के वन जाने की बात सुनकर सीता उनके साथ जाने का आग्रह करते हुए कहती हैं –

**'जहँ लगी नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी।।'¹⁵**

अर्थात् हे नाथ! जहाँ तक स्नेह और नाते हैं, पति के बिना स्त्री को सूर्य से भी बढ़कर तपाने वाले हैं। जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी, वैसे ही हे नाथ! बिना पुरुष के स्त्री है। यह स्त्री का पति-धर्म है और दूसरी ओर पति है जिसके लिए स्त्री की क्षति विशेष क्षति नहीं।

प्रश्न तो यही है उठता है कि नारी संबंधी इस सोच की जड़ कहाँ है और ये सोच ऐसी क्यों है? समाज की पचास प्रतिशत आबादी

को यदि अनायास या सुनियोजित ढंग से, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में जड़, अज्ञानी अधम और गैरजरूरी समझ लिया गया हो तो उस समाज और राष्ट्र का उत्थान कैसे संभव है? जब स्त्री की क्षति विशेष क्षति है ही नहीं तो उसके होने न होने से क्या फर्क पड़ता है? जब स्त्री सब दुखों का मूल है तो क्यों न उसे समाप्त कर दिया जाए? संभवतः इसी प्रकार की सोच परिपक्व होते-होते कन्या-भ्रूण हत्या जैसे घृणित अपराध की जड़ बन गई हो? पुरुष ने स्त्री के अवांछित और गैर जरूरी होने की घोषणा की और स्त्री ने पुरुष को परमेश्वर और स्वामी मानकर यह स्वीकार कर लिया। इसका परिणाम यह हुआ कि स्वयं स्त्री यह वर माँगने लग गई कि 'अगले जनम मोहे बिटिया न कीजो।'

हर व्यक्ति अपनी परंपरा का विकास चाहता है। संत संतत्व का और दुष्ट दुष्ट समाज का विकास करना चाहता है। पुत्र को वंश-वृद्धि का मूल बताकर पुरुष अपनी परंपरा का विकास करता है। पर यह स्त्री ही है जो स्वयं अपने ही प्रतिरूप की हत्या करने या करवाने पर सहमत हो जाती है। एक वही है जो अगले जन्म में भी बेटी नहीं बनना चाहती क्योंकि वह जानती है – पराधीन व्यक्ति को सपने में भी सुख नहीं मिलता।

संदर्भ-ग्रंथ

1. रामचरितमानस – बालकाण्ड, पृष्ठ – 94
2. ध्रुवस्वामिनी – जयशंकर प्रसादए पृष्ठ – 42
3. चाणक्यनीतिदर्पणः – डॉ गुंजेश्वर चौधरी, पृष्ठ – 17
4. रामचरितमानस – बालकाण्ड, पृष्ठ – 94
5. रामचरितमानस – बालकाण्ड, पृष्ठ – 277
6. रामचरितमानस – बालकाण्ड, पृष्ठ – 100
7. रामचरितमानस – बालकाण्ड, पृष्ठ – 108
8. रामचरितमानस – बालकाण्ड, पृष्ठ – 58
9. रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, पृष्ठ – 573
10. रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, पृष्ठ – 573
11. रामचरितमानस – अरण्यकाण्ड, पृष्ठ – 574
12. रामचरितमानस – अयोध्याकाण्ड, पृष्ठ – 330
13. रामचरितमानस – अयोध्याकाण्ड, पृष्ठ – 434
14. रामचरितमानस – लंकाकाण्ड, पृष्ठ – 760
15. रामचरितमानस – अयोध्याकाण्ड, पृष्ठ – 358